निराला-काव्य
और वक्रोक्ति सिद्धान्त

नमूना • SAMPLE

नमूना • SAMPLE

निराला-काव्य और वक्रोक्ति सिद्धान्त

डॉ. मीरा शर्मा

नमूना • SAMPLE

अखण्ड पब्लिशिंग हाउस
दिल्ली (भारत)

द्वारा प्रकाशित

अखण्ड पब्लिशिंग हाउस

एल-9ए, प्रथम तल, गली न. 42,
सादतपुर एक्सटेंसन, दिल्ली-110094 (भारत)
Phone : 9968628081, 9013387535
E-mail : akhandpublishinghouse@gmail.com
akhandpublishing@yahoo.com
Website : www.akhandbooks.com

निराला-काव्य और वक्रोक्ति सिद्धान्त

आईएसबीएन : 978-81-996391-3-3
सर्वाधिकार : © डॉ. मीरा शर्मा
संस्करण : प्रथम, 10 जनवरी, 2026

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस प्रकाशन के किसी भी हिस्से को प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना इलेक्ट्रॉनिक या किसी अन्य माध्यम द्वारा पुनः प्राप्ति समेत किसी भी रूप में प्रतिलिपिकृत, अनुवादित, संगृहीत नहीं किया जा सकता है और न ही किसी भी रूप में या किसी भी माध्यम द्वारा इसे प्रसारित किया जा सकता है।

इस पुस्तक में लेखक द्वारा व्यक्त विचार उनके व्यक्तिगत हैं जिसका प्रकाशक से कोई संबंध नहीं है।

भारत में प्रकाशित

झपसू यादव द्वारा 'अखण्ड पब्लिशिंग हाउस' के लिए प्रकाशित। वी.एम. ग्राफिक, दिल्ली द्वारा कवर डिजाइन व शब्द संयोजन तथा आरना इंटरप्राइजेज, दिल्ली से मुद्रित।

SAMPLE

अनुक्रमणिका

प्राक्कथन *vii*

1. वक्रोक्ति शब्द का अर्थ एवं स्वरूप विश्लेषण 1
आचार्य कुन्तक से पूर्व संस्कृत साहित्य में वक्रोक्ति का स्वरूप भरत, भामह, उद्‌भट, दण्डी आदि आचार्यो की वक्रोक्ति विषयक मान्यताएँ। आचार्य कुन्तक द्वारा वक्रोक्ति का सांगोपांग निरूपण। कुन्तक - परवर्ती आचार्यो की दृष्टि में वक्रोक्ति, हिन्दी काव्य शास्त्र में वक्रोक्ति का स्वरूप। निष्कर्ष।

2. वक्रोक्ति और अन्य भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य सिद्धान्त 52
वक्रोक्ति एवं अन्य काव्य सिद्धान्त
वक्रोक्ति एवं अलंकार।
वक्रोक्ति एवं रीति।
वक्रोक्ति एवं ध्वनि।
वक्रोक्ति एवं रस।
वक्रोक्ति एवं औचित्य।
वक्रोक्ति एवं पाश्चात्य काव्य सिद्धान्त।
वक्रोक्ति एवं अभिव्यंजनावाद।
वक्रोक्ति एवं औदात्य।
निष्कर्ष।

3. निराला काव्य में वर्ण-विन्यास वक्रता 87

4. निराला काव्य में पद-पूर्वार्ध वक्रता का स्वरूप 128
रूढ़ि - वैचित्र्य वक्रता

SAMPLE

पर्याय – वक्रता
उपचार – वक्रता
विशेषण – वक्रता
संवृत्ति – वक्रता
प्रत्यय – वक्रता
आगम – वक्रता
भाव – वैचित्र्य वक्रता
वृत्ति – वक्रता
लिंग – वक्रता
क्रिया – वैचित्र्य वक्रता

5. निराला काव्य में पद-परार्ध वक्रता का स्वरूप **193**
काल – वैचित्र्य वक्रता
कारक – वक्रता
वचन – वक्रता
पुरुष – वक्रता
उपग्रह – वक्रता
प्रत्यय – वक्रता
उपसर्ग – वक्रता
निपात – वक्रता

6. निराला काव्य में वस्तु वक्रता का स्वरूप **225**

7. निराला काव्य में प्रकरण वक्रता का स्वरूप **250**

8. निराला काव्य में प्रबन्ध वक्रता **297**

उपसंहार ***314***
सहायक ग्रन्थ सूची ***317***

नमूना • SAMPLE

प्राक्कथन

अत्यन्त प्रभावी उदात्त एवं भास्वर व्यक्तित्व से हिन्दी जगत् को चमत्कृत करने वाले महाकवि निराला का काव्य हिन्दी साहित्य की अमर निधि है। इनके काव्य में आधुनिक युग समग्रता के साथ रूपायित हुआ है। समाज में व्याप्त अन्याय अत्याचार, कुरीति एवं पाखण्डों का जैसा ज्वलन्त चित्रण निराला काव्य में हुआ है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। दीन दलितों के प्रति सहानुभूति तो इनके काव्य में साकार हो उठी है। संस्कृति प्रेम एवं राष्ट्र भक्ति ने इनकी गरिमा को द्विगुणित कर दिया है। इस प्रकार इनके काव्य में जहाँ विषय की गम्भीरता है, वहीं विषय के अनुकूल ही उदात्त भाषा के प्रयोग से उनका काव्य अत्यन्त गौरवान्वित हो गया है। अतएव अनुभूति एवं अभिव्यक्ति उभयदृष्टियों से महिमामंडित उनका काव्य अनुसंधित्सुओं के आकर्षण का केन्द्र बिन्दु बना हुआ है। परिणामतः अनेक शोधार्थी निराला काव्य के विविध पक्षों का अनुशीलन कर चुके हैं, परन्तु वक्रोक्ति की दृष्टि से किसी अनुसंधाता ने इनके काव्य की ओर अग्रसर होने का प्रयास नहीं किया। प्रस्तुत प्रबन्ध इसी अभाव की पूर्ति हेतु किये गये प्रयासों का ही सुपरिणाम है जिसका प्रकरणशः संक्षिप्त विवरण यहाँ प्रस्तुत किया गया है।

प्रथम प्रकरण में वक्रोक्ति के स्वरूप की विवेचना की गई है। वक्रोक्ति शब्द के विभिन्न अर्थों एवं उसके लक्षण को स्पष्ट करते हुए कुन्तक से पूर्व वकोक्ति के स्वरूप की ओर संकेत किया गया है। तदनंतर कुन्तक द्वारा प्रतिपादित वक्रोक्ति के स्वरूप की सांगोपांग मीमांसा की गई है। पश्चात् कुन्तक के परवर्ती आचार्यों की वक्रोक्ति विषयक धारणाओं का सम्यक् निरूपण हुआ है। अंत में, निष्कर्ष रूप में वक्रोक्ति के स्वरूप को स्पष्ट कर दिया गया है।

SAMPLE

द्वितीय प्रकरण में अन्य भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य सिद्धान्तों से वक्रोक्ति की तुलना की गई है और अलंकार, रस, ध्वनि, रीति, औचित्य अभिव्यंजनावाद एवं औदात्य के साथ वक्रोक्ति का साम्य एवं वैषम्य प्रदर्शित करते हुए काव्य में उसके महत्त्व की स्थापना की गई है।

तृतीय प्रकरण में वर्ण विन्यास वक्रता की स्वरूप विवृति के साथ-साथ निराला काव्य में वर्ण-वक्रता के अनुसंधान का प्रयास किया गया है। वर्ण-विन्यास-वक्रता के विविध भेदों की ओर सोदाहरण संकेत किया गया है। निष्कर्ष रूप में यह स्पष्ट कर दिया गया है कि वर्णों के वैचित्र्यमय प्रयोग से निराला काव्य अत्यन्त आकर्षणयुक्त बन गया है।

चतुर्थ प्रकरण में पद-पूर्वार्ध-वक्रता का विवेचन है। यहाँ पद पूर्वार्ध-वक्रता की उपयोगिता की ओर इंगित करते हुए निराला काव्य में विद्यमान इस वक्रता भेद के चमत्कार का मूल्यांकन किया गया है। अनेक उदाहरण प्रस्तुत करते हुए अपने मत की पुष्टि की गई है।

पंचम प्रकरण पद-परार्ध-वक्रता का विषय है तथा इस प्रकरण में पद परार्ध वक्रता से उपलब्ध निराला काव्य के गौरव को प्रदर्शित किया गया है।

षष्ठ प्रकरण वस्तु वक्रता को लेकर चला है। प्रथम इसमें वस्तु-वक्रता का स्वरूप विवेचन करते है, अनन्तर अनेक भेद प्रभेदों का उल्लेख करते हुए पर्याप्त उद्धरणों के साथ निराला काव्य को उनसे प्राप्त मनोहरता का निरूपण किया गया है।

सप्तम प्रकरण में काव्य के लिए प्रकरण वक्रता की आवश्यकता पर प्रकाश डाला गया है। अनन्तर निराला काव्य में निहित प्रकरण-वक्रता की महिमा को प्रदर्शित किया गया है। पुष्टि के लिए प्रचुर उदाहरण प्रस्तुत किये है।

अष्टम प्रकरण में प्रबन्ध काव्य की सफलता के लिए प्रबन्ध-वक्रता की अनिवार्यता को प्रकाशित किया है। पश्चात् निराला काव्य में विद्यमान प्रबन्ध-वक्रता के गौरव को प्रदर्शित किया गया है। अन्त में उपसंहार रूप में वक्रोक्ति के परिप्रेक्ष्य में निराला काव्य का मूल्यांकन है, जिसमें यह स्पष्ट किया गया है कि वक्रोक्ति प्रयोग में कवि श्री निराला अत्यन्त निष्णात हैं तथा वक्रोक्ति के भेद प्रभेदों के सहज प्रयोग के आश्रय से उनकी अभिव्यक्ति अत्यन्त गौरवान्वित हो उठी है।

सम्प्रति मैं गुरुवर डॉ. स्वर्गीय श्री सोरन सिंह शास्त्री, अध्यक्ष (हिन्दी विभाग), डी.ए.वी. (पी.जी.) कालिज, बुलन्दशहर के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करना अपना पावन कर्तव्य समझती हूँ जिनकी परम कृपा एवं कुशल निर्देशन के फलस्वरूप ही मेरा यह महत् कार्य सम्पन्न हो सका है।

डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना, अवकाशप्राप्त अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, एन.आर.ई.सी. कालिज, खुर्जा, डॉ. उदय भानु सिंह, अवकाश प्राप्त अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, डॉ. मनोहर लाल गौड़, अवकाश प्राप्त अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, धर्म समाज कॉलिज, अलीगढ़ के प्रति भी मैं आभार प्रकट करती हूँ जिन्होंने समय-समय पर उत्पन्न बाधाओं का निवारण करते हुए मुझे सहयोग प्रदान दिया है।

आदरणीय गुरु माँ श्रीमती शकुन्तला देवी के प्रति भी मैं श्रद्धावनत हूँ, जिनकी सतत् प्रेरणा मेरा सदैव उत्साहवर्धन करती रही है। मेरे इस शोध कार्य के कारण उत्पन्न होने वाली अनेक बाधाओं को सहर्ष स्वीकारते हुए, मेरे पति श्री प्रकाश चन्द्र शर्मा ने मुझे अनेक प्रकार से सहयोग प्रदान कर भारतीय संस्कृति का जो गौरव बढ़ाया है, उसके लिए मैं केवल शब्दों में आभार प्रकट करके "नारी तुम केवल श्रद्धा हो" में स्थापित भारतीय नारी की महिमा को कम नहीं करना चाहती।

मैं प्रोफेसर शशि प्रभा जी के प्रति भी आभार व्यक्त करती हूँ क्योंकि उनके सहयोग के बिना मेरे शोध का प्रकाशन असम्भव था। अन्त में, मैं उन समस्त महानुभावों के प्रति कृतज्ञ हूँ, जिनके प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष सहयोग से मेरा यह शोध प्रबन्ध पूर्ण हो सका।

–डॉ. मीरा शर्मा

नमूना • SAMPLE

1

वक्रोक्ति शब्द का अर्थ एवं स्वरूप विश्लेषण

वक्रोक्ति शब्द दो शब्दों के योग से निर्मित हुआ है– वक्र+उक्ति। वक्र शब्द का अर्थ है– कुटिल, झुका हुआ, टेढ़ा, चक्करदार आदि।[1] तथा उक्ति वचूक्तिन् का अर्थ है भाषण, अभिव्यक्ति।[2] इस प्रकार वक्रोक्ति शब्द का अर्थ हुआ टेढ़ा, भाषण, कथन, चमत्कारपूर्ण अभिव्यक्ति। भारतीय साहित्य शास्त्र में इस शब्द का प्रयोग दो रूपों में मिलता है। प्रथम–एक अलंकार के रूप में– जिसमें वक्रता द्वारा प्रयुक्त उक्ति श्लेष या काकु के बल से श्रोता द्वारा किसी अन्य ही अर्थ में ग्रहण की जाती है। द्वितीय, वक्रोक्ति का प्रयोग एक साहित्यशास्त्रीय सम्प्रदाय के रूप में हुआ है, जिसके संस्थापक आचार्य कुन्तक थे। आचार्य कुन्तक ने तो वक्रोक्ति को काव्य के प्राण तत्व के रूप में ही स्वीकार किया था; परन्तु उनसे पूर्व भी आंशिक रूप में उसका अस्तित्व भारतीय साहित्य शास्त्र में विद्यमान था। यहाँ सर्वप्रथम कुन्तक से पूर्ववर्ती वक्रोक्ति के स्वरूप को स्पष्ट करना ही समीचीन होगा।

आचार्य कुन्तक से पूर्व वक्रोक्ति का स्वरूप–

भारतीय काव्यशास्त्र में कुन्तक ने जिस वक्रोक्ति की प्रतिष्ठा की थी उसकी प्रेरणा निश्चय ही सुबन्धु अमर एवं बाण के काव्य ग्रन्थों से मिली थी। भारतीय काव्यशास्त्र में वक्रोक्ति का प्रयोग दो अर्थों में मिलता है। प्रथम व्यापक अर्थ में तथा दूसरा संकुचित अर्थ में। सर्वप्रथम वक्रोक्ति के व्यापक

SAMPLE

रूप के दर्शन हमें भामह में ही पूर्णरूपेण मिलते हैं, परन्तु इससे पहले भी संस्कृत लेखक बाण सुबन्धु आदि ने भी अपने ग्रन्थों में वक्रोक्ति का उल्लेख किया है।

सुबन्धु ने अपनी श्रेष्ठ कृति "वासवदत्ता" में अनेक स्थलों पर वैदग्ध्य के महत्व को स्वीकारा है जो यह सिद्ध करता है कि सुबन्धु वैदग्ध्य अर्थात् वक्रोक्ति से परिचित थे। अपनी कृति के आरम्भ में कवि लिखता है–

सरस्वतीदत्तवरप्रसादचक्रे सुबन्धुसुजनैक बन्धुः।
प्रत्यक्षस्यलेषमय प्रबन्ध विन्यास वैदग्ध्यनिधिनिर्ब।।[3]

यद्यपि इस श्लोक में वक्रोक्ति शब्द का उल्लेख नहीं हुआ है तथापि वैदग्ध्य शब्द का प्रयोग भी वक्रोक्ति की ओर ही इंगित करता है। अतः सुबन्धु भी वक्रोक्ति से भली भाँति परिचित थे।

"अमरूशतक" में भी वक्रोक्ति "परिहास जल्पित" के अर्थ में प्रयुक्त हुई है–

सा पत्युः प्रथमापराध समये सख्योपदेशं विना,
नौ जानाति सविभ्रमांगवलना वक्रोक्ति संसूचनम्।
स्वेच्छरैच्छ-कपोल-मूल-गलितैः पर्यस्त नेत्रोत्पला
त्वाला केवलमेव रोदिति लुठल्लोलालकैरशुभि।।[4]

बाण–

वक्रोक्ति के तलस्पर्शी एवं व्यापक अर्थ को अन्य संस्कृत आचार्यों के अतिरिक्त वाणीट्ट ने भी अपने महान ग्रन्थ "कादम्बरी" में अनेक स्थलो पर ग्रहण किया है। "कादम्बरी में वक्रोक्ति के सुस्पष्ट दर्शन हमें वहाँ होते हैं जहाँ "राजा शूद्रक को वक्रोक्ति निपुण कहा गया है।"[5] इसके उपरान्त शुकनास वर्णन प्रंसग में "कामिनी कुचपत्रभगेष वक्रता"[6] कह कर बाण हमें विलक्षणता के व्यापक अर्थ पर दृष्टिपात कराते हैं। कादम्बरी का गूढ अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि कवि बाण भट्ट को वैदग्ध्य की महिमा एवं उसके विभिन्न तत्वों का विशेष ज्ञान था जिसको लक्ष्य मान कर कविराज ने "राघव पाण्डीयम्" में "सुबन्धु वाणीाट्टश्च् कविराज इति त्रयवक्रोक्ति मार्ग निपुणश्चतर्दो विद्येत नवा"[7] कहकर सुबन्धु बाण और स्वयं को वक्रोक्ति मार्ग में निपुण स्वीकार किया है। "बाण भट्ट" के अपने ग्रन्थ "हर्ष चरित" में "कादम्बरी" के समान वक्रोक्ति दृष्टिगोचर नहीं होती तथापि "विद्वदगोष्ठी

बन्धवैदग्ध्यम्"[8] का प्रयोग मिलता है उसे यदि वक्रोक्ति की संज्ञा दी जाये तो वह अनुपयुक्त न होगी। बाण की यह वक्रोक्ति काव्य को चमत्कृत करने की शैली से पूर्ण तथा वचन विदग्धता की ही पर्याय है जिसका "हर्ष चरितम्" में विश्लेषण करते हुए कवि ने लिखा है कि– "नवीन अर्थ अग्राम्य जाति अक्लिष्ट श्लेष स्फुट रस और विकट अक्षरबन्ध आदि इन सभी का एक साथ किसी भी काव्य में परिलक्षित होना कठिन होता है।"[9]

इससे सिद्ध होता है कि स्वयं कवि ने वक्रोक्ति में शब्द-संयोजन की अपेक्षा शब्द एवं अर्थ दोनों की ही वक्रता को अनिवार्य माना है, उसमें अक्लिष्ट श्लेष एवं नूतन अर्थ दोनों का चमत्कार स्वीकारा है। निश्चय ही संस्कृत साहित्य में आचार्य बाण वक्रोक्ति मार्ग के निपुण एवं श्रेष्ठ कवि हुए हैं।

भरत–

"भामह को वक्रोक्ति की महत्वपूर्ण कल्पना कहाँ से प्राप्त हुई इस पर विचार करने से स्पष्ट होता है कि निश्चय ही भरत का साहित्य ही उनके लिए वक्रोक्ति का प्रेरणा स्रोत है। डॉ. कान्ति चन्द्र पाण्डेय का मत है कि वक्रोक्ति का विभावन भामह से अधिक पुराना होना चाहिए।"[10] भरत ने अपने नाट्य शास्त्र में केवल चार ही अलंकारों का वर्णन किया है जो कि साहित्यिक इतिहास के अनुकूल नहीं है क्योंकि भरत जैसे उच्च कोटि के नाट्य शास्त्री क्या केवल चार ही अलंकारों से अवगत थे। जबकि भास के नाटकों का संस्कृत साहित्य में निश्चय ही भरत के नाट्यशास्त्र से पूर्व ही प्रणयन हो चुका था जिसमें अधिक मात्रा में अलंकारों का प्रयोग मिलता है यहाँ डॉ. कान्ति चन्द्र पाण्डेय का विचार स्पष्ट है कि "साहित्यिक इतिहास का साक्ष्य इसके सर्वथा प्रतिकूल होना उचित ही है।"[11] इससे स्पष्ट हो जाता है कि भरत को केवल चार ही अलंकारों का ज्ञान नहीं था। उन्होंने अन्य अलंकारों को किसी और रूप में ग्रहण किया है।

वस्तुतः वक्रोक्ति की उद्भावना भामह से भी पूर्व युग से सम्बद्ध है इसका कारण है कि जहाँ अन्य अलंकारों का उन्होंने लक्षण किया है वहाँ उन्होंने वक्रोक्ति को बिना व्याख्या किये हुए ही ग्रहण कर लिया है। भरत ने लक्षण स्पष्ट करते समय अलंकार और लक्षण को भिन्न-भिन्न माना है। उन्होंने अपने नाट्य शास्त्र में "षटत्रिंशत लक्षणान्येवं काव्य बन्धेष निर्दिशेत।"[12] कहकर बताया है कि अलंकार तो चार होते हैं परन्तु लक्षण छत्तीस होते हैं।

भामह और अन्य आचार्यों ने भरत के लक्षण और अलंकारों के पार्थक्य की अवहेलना की है तथा सभी लक्षणों को अलंकार में समाविष्ट कर दिया है। भरत के लक्षण और अलंकार के पार्थक्य पर अभिनव भामह की निम्न पंक्ति को उद्धृत करते हैं–

"सैषा सर्वेव वक्रोक्तिरनयाऽर्थो विभाव्यते"[13]

अभिनव गुप्त ने लक्षण को इस प्रकार परिभाषित किया है– "कवि व्यापार के बल से जो अर्थ समूह लौकिक स्वभाव से युक्त पाया जाता है वही लक्षण है।"[14] भरत ने इन लक्षणों की संख्या सीमित कर दी है परन्तु लक्षण असीमित होते हैं। भामह कुन्तक आदि जिसको वक्रोक्ति कहते हैं भरत उसी वक्रोक्ति को लक्षण की संज्ञा देते है। अभिनव के अनुसार–"परमार्थ में व्यापार ही लक्षण है"[15] तथा लक्षण, वक्रोक्ति एवं कवि व्यापार तीनों से एक ही अर्थ की प्रतीति होती है; तीनों ही एक दूसरे के पर्याय हैं। इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि भरत ही वक्रोक्ति के आदि आचार्य हैं वक्रोक्ति के लिये भामह कुन्तक आदि सदैव भरत के ऋणी रहेंगे।

भामह–

काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में वक्रोक्ति का सर्वप्रथम सुनियोजित वर्णन हमें भामह के ग्रन्थों में मिलता है भामह ने वक्रोक्ति के इसी व्यापक एवं तलस्पर्शी अर्थ को ग्रहण किया है जिसके यत्र-तत्र बाण की कादम्बरी में दर्शन होते हैं। भामह का वक्रोक्ति मार्ग भाव एवं शिल्प दोनों के सुन्दर समन्वय से निर्मित हुआ है। भामह वक्रोक्ति को सभी अलंकारों का मूल मानते हैं तथा अतिशयोक्ति एवं वक्रोक्ति को एक दूसरे का पर्याय मानते हैं। आप काव्य के लिए शब्दार्थ युगल की वक्रता को अनिवार्यता प्रदान करते हैं। भामह के अनुसार– "केवल नितान्त आदि शब्दों के प्रयोग से वाणी में सौन्दर्य नहीं आता, वक्र शब्द और अर्थ का प्रयोग वाणी का अलंकार है।"[16] तात्पर्य यह है कि यदि हम सीधे-सरल शब्दों द्वारा किसी के रूप का व्याख्यान करें अर्थात् कहें कि उसका मुख बहुत सुन्दर है तो इसमें कोई चमत्कार दर्शनीय नहीं होता। काव्य के सौन्दर्य प्रस्तुतीकरण के लिये शब्द और अर्थ दोनों में ही विदग्ध्यता लाना अनिवार्य है। भामह एक अन्य स्थान पर भी इस सम्बन्ध में अपना मत स्पष्ट करते हैं– "केवल शब्द अथवा अर्थ की वक्रता से ही काव्य चमत्कृत नहीं होता उसके लिए दोनों की ही वक्रता का होना अनिवार्य है।"[17]

वक्रोक्ति से तात्पर्य है शब्द एवं अर्थ की वक्रता। वक्राभिधेय शब्दोक्ति एवं वक्रार्थ शब्दोपित को भामह एक ही रूप में लेते है। शब्द एवं अर्थ की वक्रता वाणी को अलंकृत करती है। भामह ने पुनः कहा है–

"तदैभ रंगे भूर्ष्यन्ते भूषणो पवन स्रज।
वाचा वक्रार्र्थ शब्दोक्तिरलंकाराय कल्पेत।।"[18]

अर्थात् इन उपादानों से तो उपवन, आभूषण एवं मालायें ही सजाई जाती हैं। वाणी को अलंकृत करने के लिए शब्द और अर्थ की वक्रता का होना आवश्यक है समृद्धि वर्णन से वाणी में अलंकारिता प्रवेश नहीं करती। अतः कवि को काव्य के बाहरी तत्वों पर दृष्टिपात करते समय आन्तरिक तत्वों पर भी अपना ध्यान केन्द्रित करना चाहिये व्यवहारिक जीवन में प्रयुक्त होने वाली उक्तियों एवं शब्दों में महान अन्तर होता है। किसी भी व्यक्ति के लिए शब्द के असीमित क्षेत्र का ज्ञान होना असम्भव है। अतः हमें उचित अनुचित शब्द का ज्ञान वक्रोक्ति के माध्यम से ही हो सकता है। भामह ने साधुत्व असाधुत्व की पहचान का वक्रोक्ति को निमित्त निकष बनाया है। उसी सन्दर्भ में वर्ण पद के सौन्दर्य को स्वीकारते हुए भामह कहते हैं कि "परम्परागत श्रुतिपेशल अर्थयुक्त शब्द ही काम में लाना चाहिए। वर्ण सौन्दर्य अन्य सभी अलंकारों से बढ़कर है"[19] कदाचित् इसी को ध्यान में रखकर कुन्तक ने वर्ण विन्यास वक्रता को स्थापित किया था।

अतिशयोक्ति एवं वक्रोक्ति–

भामह ने वक्रोक्ति के स्वरूप वर्णन द्वारा वक्रोक्ति के आश्रय को स्पष्ट किया है। भामह वक्रोक्ति एवं अतिशयोक्ति को एक ही मानते हुए लिखते हैं– "एवं चातिशयोक्तिरिति वक्रोक्तिरिति पर्याय इति बोध्यम्।"[20] अर्थात् दोनों एक ही हैं। आचार्य भामह ने अतिशयोक्ति को इन शब्दों के माध्यम से परिभाषित किया है–

निमित्ततो वचो भत्तु लोकातिक्रान्तगीचरम्।
मन्यते तिशयोक्ति तामलंकारतया यथा।।[21]

अर्थात् विशिष्ट अर्थ कहने के उद्देश्य से लोकोत्तर अर्थ का बोधक जो वचन है उसे अतिशयोक्ति अलंकार के नाम से जाना जाता है। इसके उपरान्त आपने स्पष्ट शब्दों में कहा है– कि सभी अतिशयोक्तियाँ गुणातिशय के योग से सम्पन्न होती है। शास्त्र के अनुसार उनकी कल्पना करनी चाहिए।[22] भामह

ने वक्रोक्ति में ही अतिशयोक्ति को समाविष्ट कर लिया है तथा दोनों भिन्न नामों के साथ एक ही रूप है तात्पर्य है कि दोनों अभिन्न है। अतिशयोक्ति ही अर्थ में पेशलता एवं सौन्दर्य का प्रादुर्भाव करती है, इसके अभाव में कोई अलंकार अपना अस्तित्व नहीं बना सकता। वक्रोक्ति एवं अतिशयोक्ति के सम्बन्ध को भामह इस श्लोक द्वारा स्पष्ट करते हैं–

"सैषा सर्वैव वक्रोक्तिरनयार्थो विभाव्यते।
यत्नोऽस्यां कविना कार्यः कोऽलंकारोऽनयाविना।।"[23]

यह वक्रोक्ति अलंकार मात्र का उपलक्षण है। सभी अलंकारो के मूल में अतिशयोक्ति निहित होती है उसी से वाणी में वैचित्र्य उत्पन्न होता है अतः अतिशयोक्ति ही सब अलंकारों की प्रतिपन्नता का कारण है। अतिशयोक्ति के अभाव में कोई भी अलंकार चमत्कार युक्त नहीं हो पाता। अतिशयोक्ति वाणी में नवीनता का संचार करती है। अतः भामह की अतिशयोक्ति "सर्वालंकार रूप" वक्रोक्ति ही है। इसके अभाव में कोई भी कथन अर्थहीन ही रह जाता है जिस वार्ता का अर्थ सदैव प्रयोग के कारण प्राचीन हो जाता है उसको अतिशयोक्ति अपने चमत्कार द्वारा नव्य रूप में प्रस्तुत कर आकर्षक बना देती है जिसके फलस्वरूप वार्ता में द्विगुणित चारुता आ जाती है। सामान्यतः उक्त श्लोक का यही अर्थ लिया गया है परन्तु आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा ने "अतिशयोक्ति का लोकोत्तरता (असाधारणता) तथा वक्रोक्ति का रमणीयता अर्थ अधिक उपयुक्त माना है।"[24] निःसन्देह कुन्तक ने यहीं से वह प्रेरणा ली है जिसके आधार पर उन्होंने समस्त सौन्दर्य तत्वों को वक्रोक्ति में समाहित कर लिया है।

वक्रोक्ति एवं स्वभावोक्ति–

साहित्य क्षेत्र में वक्रोक्ति चारों तरफ व्याप्त है। अर्थात् उसका क्षेत्र असीमित है। काव्य का पूर्ण सौन्दर्य वक्रोक्ति पर ही निर्भर करता है। वक्रोक्ति केवल अलंकारो को ही प्रभावित नहीं करती अपितु काव्य के सभी रूपों में भी वक्रोक्ति का चमत्कार विद्यमान रहता है। भामह का निम्न कथन इसी मत की पुष्टि करता है–

"युक्तं वक्रस्वभावोक्त्या सर्वमेवैतदिष्यिते।"[25]

इस कारिका में "वक्रस्वभावोक्त्या" पद आलोचकों की दृष्टि में अत्यन्त ही विवाद ग्रस्त रहा है। इसका एक मात्र कारण है कि जब आचार्य भामह

समस्त काव्य प्रपंच के मूल में वक्रोक्ति को व्याप्त मानते हैं तब यहाँ वक्रोक्ति के अतिरिक्त स्वभावोक्ति के अस्तित्व को क्यों स्वीकारा है? उनके अनुसार– "वस्तु का यथातथ्य रूप में अंकन स्वभावोक्ति गया है।"[26] निःसन्देह भामह यहाँ यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि जहाँ कवि किसी रमणीय वस्तु का यथा तथ्य रूप में अंकन करता है वहाँ उसे अलंकारों का मोह छोड़ ही देना चाहिए। भामह के परवर्ती आचार्यों ने भी इसी मत का अनुकरण दिया है कि रस प्रधान काव्य में अनुप्रासादि शब्दालंकार के आधिक्य एवं प्राथमिकता के कारण काव्य जनसाधारण को आकर्षित कर लेगा ऐसी स्थिति में उस काव्य की रसात्मकता गौण रूप प्राप्त कर लेगी अथवा अलंकार उसे रस विमुख कर देंगे।

वक्रोक्ति एवं वार्त्ता–

साधारण कथन को वार्ता कहते हैं अर्थात् जिसके अर्थ में बिल्कुल भी वक्रता न हो यथा– "सूर्य अस्त हो रहा है।" परन्तु इसी को वक्रोक्ति का पुट देकर इस प्रकार कहा जा सकता है दिन भर आकाश में चलने के कारण दिनकर थकान से चूर हो विश्राम हेतु प्रतीची दिशा की गोद में लीन हो रहा है - यही वक्रोक्ति है। वार्ता के अन्य उदाहरण– चन्द्रमा चमकता है। मुख सुन्दर है आदि। इन चमत्कारहीन वाक्यों में हमें सामान्य रूप से किसी घटना की सूचना मात्र मिलती है इन्हीं सौन्दर्यविहीन वाक्यों को भामह वार्ता कहते हैं।[27] आचार्य शुक्ल ने इसे इतिवृत्त–कथन कहा है। भामह के अनुसार वक्रोक्ति काव्य का नित्य-धर्म है। वक्रोक्ति का अभाव रहने से वे हेतु, सूक्ष्म एवं लेश अलंकारो का अस्तित्व ही नहीं स्वीकारते।[28] आप वक्रोक्ति एवं वार्ता को परस्पर–विरोधी मानते हैं।

इस प्रकार भामह स्वभावोक्ति को वक्रोक्ति में ही समाविष्ट कर अतिशयोक्ति एवं वक्रोक्ति को एक दूसरे का पर्याय स्वीकारते हैं तथा चमत्कार रहित वक्रोक्ति के अभाव से युक्त उक्ति को ही वे वार्ता कहते हैं।

उद्भट–

अलंकार समुदाय के उन्नायक एवं भामह के टीकाकार और अनुयायी उद्भट के प्राप्त ग्रन्थों में कहीं भी वक्रोक्ति सम्बन्धित विचारों का उल्लेख नहीं मिलता। हाँ ऐसा हो सकता है कि जो उनके अप्राप्य ग्रन्थ हैं– "भामह विवरण", "काव्यालंकार विवृत्ति" आदि में उन्होंने अपने वक्रोक्ति सम्बन्धी

विचार प्रदर्शित किये हो। काव्यालंकारसारसंग्रह तो बहुत ही साधारण सी पुस्तक है जिसमें कहीं भी वक्रोक्ति का उल्लेख नहीं मिलता। अत: या तो आचार्य उद्‌भट ने वक्रोक्ति के सम्बन्ध में अपनी लेखनी चलाई ही नहीं, यदि चलाई भी है तो यह ग्रन्थ शायद लुप्त हो गये हैं।

दण्डी–

भामह के उपरान्त दण्डी ने ही अपने ग्रन्थ "काव्यादर्श" में वक्रोक्ति का प्रतिपादन किया है। दण्डी में आकर वक्रोक्ति एवं स्वभावोक्ति का पृथक्-पृथक् स्वरूप दर्शित होता है। दण्डी ने सम्पूर्ण वाङ्मय के दो व्यापक स्वभावोक्ति एवं वक्रोक्ति भेद किये हैं–

"श्लेष: सर्वासु पुष्णाति प्रायो वक्रोक्तिषु श्रियम्।
भिन्नं द्विधा स्वभावोक्तिर्वक्रोक्तिश्चेतिवाङ्मयम्।।"[29]

दण्डी के टीकाकार आचार्य रामचन्द्र मिश्र ने व्याख्या करते हुए लिखा है कि काव्य में दो तरह की उक्ति शैली को प्रश्रय दिया जाता है। एक स्वरूप वर्णन को तथा दूसरे चमत्कृत वर्णन उक्ति वैचित्र्य को। इन दोनों में ही समस्त काव्य प्रवृत्तियाँ निहित हैं। इन दोनों शैलियों में यर्थात स्वरूप वर्णन वाली शैली स्वभावोक्ति से युक्त रह सकती है तथा दूसरी शैली उक्ति वैचित्र्य वक्रोक्ति से युक्त रह सकती है।[30] स्वभावोक्ति के अतिरिक्त श्लेष अलंकारों को वक्रोक्ति का पर्याय माना जाता है, क्योंकि स्वभावोक्ति में पदार्थ वर्णन साक्षात रूप से तथा वक्रोक्ति में असाक्षात रूप से या चमत्कार पूर्ण ढंग से किया जाता है। उपमा आदि अन्य सभी अलंकारवक्रोक्ति के प्रकार हैं हृदयंगमा टीका में इस सम्बन्ध में इस प्रकार लिखा हुआ है– "वक्रोक्तिशब्देन उपमादय: संकीर्ण पर्यन्ता अलंकारा उच्यन्ते।"[31] इन सभी के चमत्कार में प्राय: किसी न किसी रूप में श्लेष के योग से चारुता बढ़ती है। यहाँ पर दण्डी ने वक्रोक्ति को थोड़ा संकीर्ण बना दिया है क्योंकि यह अनिवार्य नहीं की सभी वक्रोक्ति में श्लेष विद्यमान हो। परन्तु दूसरी और दण्डी का यह कथन कि श्लेष एक ऐसा तत्व है जो और भी अनेक अलंकारों को चारुता प्रदान करता है उनके उपर्युक्त कथन को असिद्ध कर देता है। तात्पर्य यह है कि दण्डी भी वक्रोक्ति को भामह के समान विशेष अलंकार के रूप में न लेकर सामान्य अलंकार ही स्वीकारते हैं। लेकिन श्लेष को वक्रोक्ति का शोभाधायक गुण ही स्वीकारते हैं।

उधर अतिशयोक्ति के प्रसंग में दण्डी अतिशयोक्ति को भी सभी अलंकारों की जड़ ही मानते है–"अलंकारान्तराणामध्येकमाहुः परायणम्"[32] इस प्रकार हम देखते हैं कि आचार्य दण्डी वक्रोक्ति एवं अतिशयोक्ति दोनों को ही अलंकारो का मूल आधार मानकर दोनों की पर्यायता सिद्ध कर देते हैं। पर्याय होने पर दोनों की परिभाषा भी वही हो जाती है जो अतिशयोक्ति की है– "विपक्षा या विशेषस्य लोक सीमातिवर्तिनीअसावतिशयोक्तिः स्यादलंकारोत्तमा यथा।"[33] असाधारण रूप से प्रस्तुत को बढ़ा-चढ़ा कर कहना ही अतिशयोक्ति है यही लक्षण भामह ने भी माना है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि दण्डी और भामह का मत प्रायः एक ही है। दोनों लोक वार्ता से भिन्न वाग्भंगिमा को ही वक्रोक्ति मानते हैं। सभी अलंकारो में किसी न किसी रूप में वक्रोक्ति अवश्य ही विद्यमान रहती है। भिन्नता केवल इतनी ही है कि भामह के अनुसार स्वाभाविक कथन भी अपने ढंग से वक्र कथन होगा। परन्तु दण्डी स्वभाव कथन को वक्र कथन से भिन्न एवं कम महत्वपूर्ण मानते हैं स्वभाव कथन की काव्य के लिए कोई अनिवार्यता नहीं– "काव्येष्वप्यतदीप्सितम्।"[34] इस प्रकार दण्डी ने वक्रोक्ति को सर्वसामान्य अलंकार मानकर उसके व्यापक अर्थ को ग्रहण किया है। दण्डी ने वक्रोक्ति को अतिशयोक्ति से भिन्न तथा स्वभावोक्ति के पृथक् अस्तित्व को स्वीकारा है। स्वभावोक्ति शास्त्र का सहज माध्यम है। काव्य में भी वह वांछनीय है किन्तु वक्रोक्ति काव्य का भेदक धर्म ही है।

आचार्य वामन–

वक्रोक्ति की अलंकार सामान्यता की परम्परा को भंग कर उसे अलंकार विशेष के रूप में स्थापित करने का श्रेय आचार्य वामन को ही है। वामन ने वक्रोक्ति को "उपमा प्रपंच" शीर्षक अध्याय में अर्थालंकार के अन्तर्गत स्वीकार किया है। जबकि परवर्ती आचार्य रुद्रट उसे शब्दालंकार मानते हैं अर्थात् उसे सादृश्यमूलक अर्थालंकार उपमा के सादृश्य ही प्रस्तुत किया है। यह दण्डी के समाधि गुण से अभिन्न है जिसमें एक वस्तु के गुण का दूसरी वस्तु में प्रक्षेपण किया जाता है। आचार्य वामन ने इसकी अपने ग्रन्थ काव्यालंकार में "सादृश्याल्लक्षव वक्रोक्ति" कहकर परिभाषित किया है। इस कारिका का स्पष्टीकरण करते हुए वे लिखते हैं– "लक्षणा में बहुत से कारण होते हैं। उनमें सादृश्य से की गई यह लक्षणा वक्रोक्ति है।"[35] इस रूप में वक्रोक्ति

गौणी लक्षणा से अभिन्न ठहरती है। वस्तुतः मुख्यार्थ में बाधा होने पर काव्य में वैचित्र्य की स्थिति आ जाती है। लेकिन वामन की परिभाषा अपनी सीमितता के कारण पूर्ववर्ती व परवर्ती किसी भी आचार्य को मान्य नहीं हो पाई है। उनकी परिभाषा का ऐतिहासिक महत्व है। वामन उदाहरण स्पष्ट करते हैं। यथा– उन्मिमील कमलम् सरसीनां कैरवंचनिमिमील पुरस्ताव।

यहाँ उन्मीलन और निमीलन जो नेत्र के धर्म है, सादृश्य मूलक लक्षणा से कमल के विकास और कुमुद के संकोच को अभिव्यक्त करते हैं। अतः यहाँ वक्रोक्ति अलंकार है। ऐसे स्थानों पर कुन्तक की उपचार वक्रता दृष्टिगोचर होने लगती है। जो दण्डी के समाधि गुण से अधिक भिन्न नहीं होती।

डॉ. राघवन का मत है कि– "ये लोग जो वक्रोक्ति में सभी प्रकार की सुन्दर अभिव्यंजनाओं को समाविष्ट कर लेते हैं केवल सादृश्य निबन्धना लक्षणा को ही नहीं अपितु समस्त लक्षणाओं को वक्रोक्ति में सम्मिलित कर लेते हैं।[36] डॉ. नगेन्द्र के विचार में सामान्य अर्थ में वक्रोक्ति की आचार्य वामन ने सदैव उपेक्षा की है। वामन की विशिष्टपदरचनारीति में विशिष्टता वक्रता से भिन्न नहीं है। आप विशेष का अर्थ गुणात्मा से लेते हैं। आपके अनेक शब्द एवं अर्थ गुण में वक्रोक्ति के अनेक रूपों का स्पष्ट अन्तर्भाव है। उदाहरण के लिए वामन के ओज, श्लेष, उदारता, कान्ति आदि अनेक शब्द गुणों में कुन्तक की वर्णविन्यासवक्रता समायी हुई है। 'कान्ति' में जहाँ पद रचना उज्ज्वल होती है और जिसके अभाव में पद रचना पुराण की छाया-सी प्रतीत होती है और 'उदारता' में जहाँ पद नृत्य सा करते प्रतीत होते हैं। वहाँ कुन्तक की वर्ण वक्रता अत्यन्त मुखर रूप में प्रकट है इसी प्रकार अर्थ गुण ओज की अर्थ प्रौढ़ि का वह रूप जिसका मूल चमत्कार है साभिप्राय विशेषण प्रयोग, निश्चय ही कुन्तक का पर्याय-वक्रता अथवा विशेषण वक्रता समानधर्म हैं। वामन ने वक्रता को अपने ढंग से अनेक रूपों में वर्णित किया है। वक्रोक्ति के व्यापक रूप की कल्पना उन्होंने प्रकारांतर से अपने सिद्धान्त के अनुसार ही की है। उसका लोकोत्तर चमत्कार उन्हें पूर्ण रूप से ग्राह्य है केवल शब्दावली ही भिन्न है।[37] वस्तुतः वामन ने काव्य-कौशल के अनेक प्रकारों का विश्लेषण किया। बाद में चलकर वही कुन्तक के प्रेरणा स्रोत बने, क्योंकि कुन्तक ने उन सभी तत्वों को व्यापक सिद्धान्त के रूप में ग्रहण किया है।